Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2019 SHISRRJ | Volume 2 | Issue 6 | ISSN : 2581- 6306

वेदों में प्रतिपादित कुटुम्ब की अवधारणा

डॉ. दिवाकर मणि त्रिपाठी
असिस्टेंट प्रोफेसर संस्कृत
वी. यस. ऐ वी पी.जी कालेज
गोला, गोरखपुर

शोध आलेख सार– वैदिक साहित्य का पर्यालोचन करने के पश्चात् यह अनुभव होता है तत्कालीन समाज में जहाँ पुरुष को कुटुम्ब का नेता माना जाता था वहीं नारी को भी सम्मानीय स्थान प्राप्त था। उसके बिना किसी प्रकार की भी धार्मिक क्रियाएं सम्पन्न नहीं हो सकती थी। पुत्री को पुत्र के समय अधिकार प्राप्त थे। वह उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकती थी। अतः इसीलिए वैदिक परिवार समुन्नत एवं सुखी दिखाई देता है।

मुख्य शब्द– वैदिक साहित्य, वेद, कुटुम्ब, मनुष्य, मौलिक, पारिवारिक।

मनुष्य चिन्तनशील प्राणी है। वह एकाकी नहीं रह सकता। परिवार उसका प्रथम आधार है। संरचना की दृष्टि से वैदिक परिवार मौलिक और आदर्श परिवार दिखाई देता है। उसका विकास इस ढंग से हुआ है कि जिससे परिवार संयुक्त रह सके। वस्तुतः परिवार की परिकल्पना विश्व को वेदों की मौलिक देन है क्योंकि विश्व की अन्य भाषाओं में भी माता-पिता आदि पारिवारिक सम्बन्धों के लिए वैदिक भाषा के अनुकरण पर ही शब्द गढ़े गए हैं। परिवार के सुसंगठन हेतु विवाहत्सव में पुरोहित मन्त्रों द्वारा वधू को आशीर्वचन देते हैं कि तुम (दम्पती) यहाँ साथ-साथ रहो, तुम कभी पृथक् न होवो, तुम दीर्घजीवन वाली हो, अपने घर में पुत्रों और पौत्रों के साथ खेलती हुई प्रसन्न हो। हे इन्द्र! इसे योग्य पुत्र और सम्पति दो, तुम अपने श्वसुर, सासु, देवर और ननद पर पक्षपात रहित सुदृदया रानी के समान शासन करो।[1]

उस समय वैदिक-परिवार पितृ-प्रधान संयुक्त प्रणाली पर आधारित थे। जिसमें कुटुम्ब के नायक, पिता सहित उसके सभी पुत्र-पौत्र साथ-साथ रहते थे।[2] अतः परिवार में सन्तुलन बनाए रखने के लिए परस्पर व्यवहार कैसा हो, इस पर चिन्तन करते हुए कहा गया है कि पुत्र अपने पित के अनुरुप व्रतधारी एवं माता के मनोनुकूल बने। पत्नी पति से सदा मधुर और शान्तमयी वाणी बोले। भाई-भाई से द्वेष न करें, बहन-बहन के प्रति स्नेह से भरी हों एवं सभी समान व्रतों का अनुसरण करते हुए प्रेमपूर्वक व्यवहार किया करें और परस्पर मित्रभाव से देखें। तुम्हारा जल पीने का स्थान एक हो और तुम्हारे भण्डार व

सम्पति भी संयुक्त हो, जिस भाँति रथ-चक्र के अरे, उसकी नाभि से जुड़े रहते हैं, उसी भाँति तुम भी एक साथ संयुक्त और प्रगतिशील बनकर यज्ञ-कर्म का सम्पादन किया करो। अर्थात् तुम्हारे यहाँ कभी भी गृह-कलह आदि के लिए कोई स्थान न हो।

पति-पत्नी— पितृ-प्रधान वैदिक-समान में पति परिवार का नायक माना जाता था।[3] पत्नी का भरण व रक्षण पूरी तरह से उसी पर निर्भर रहता था। पति स्वयं पणिग्रहण के समय पत्नी की रक्षा और पालन का व्रत लेता था। वस्तुतः 'पति' का अर्थ ही पालक है। पति को देवता के समान पूज्य माना गया है वही पत्नी का आधार है इसलिए समाज में पति की स्थिति के अनुरुप ही पत्नी को आदर मिलता था।

पत्नी शब्द की व्युपति से सिद्ध है कि पत्नी उसी को माना गया है, जो यज्ञ और फल में भागीदार हो, तथा जो पति के साथ अथवा विशेष स्थितियों में अकेली भी यजन-कार्य करने में स्वतंत्र हो। इस संयुक्त कर्त्तव्य के कारण ही उसे सहधर्मिणी और पाणिगृहीतिका कहा गया है। इतने घनिष्ठ सम्बन्धों के फलस्वरुप ही शास्त्रों और लोकाचार द्वारा उसे अर्धंगिनी की पद्वी प्रदान की गई है। उसका महनी कार्य वंश-परम्परा हेतु सन्तान-प्राप्ति माना गया है।[4]

वस्तुतः घर की आधार-शिला वही है, इसलिए उसे 'सुगृहिणी' कहा है। अतः ऋग्वेद में उसे घर की आत्मा, ज्योति और सम्राज्ञी की उपाधियों से विभूषित किया गया है।[5]

माता-पिता

पिता— पति पत्नी ही पुनः माता-पिता की भूमिकाओं में अवतरित होते हैं। पिता परिवार का मुखिया था, जो कुटुम्ब का संचालक और संरक्षक भी था। अतः वेद में पिता के लिए प्रयुक्त 'कुलया' विशेषण का अर्थ गृहरक्षक ही ज्ञात होता है। जो अन्न व सत्कार से सन्तान का सक्षण करे वही पिता है।

संक्षेप में वेदों में पिता सन्तान का जन्मदाता, भोजन प्रदाता और रक्षक रुप में वर्णित है।[6] सम्भवतः इसी सम्मान के कारण उसे आकाश से ऊँचा कहा गया है।

बहुत कुछ कहते हुए उसे सहस्र पिताओं और आचार्यों से बढ़कर कहा गया है। अतः मानव-निर्मातृ-शक्ति माता को वैदिक समाज में सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। माता सर्वप्रथम गुरु और सन्तान के मन को जान लेने वाली देवी होती है। माता का शिशु से न केवल भौतिक अपितु संवेदनीय और आत्मीय सम्बन्ध भी है। मनोवैज्ञानिक रुप से माता के विचारों और संस्कारों को शिशु पर गहरा प्रभाव पड़ता है। तभी तो सन्तान को आत्मज कहा गया है। माता-शिशु काल की शिक्षिका भी है। अतः जिसे प्रशस्ता और धार्मिक माता मिले, वही मातृमान् और सौभाग्यशाली माना गया है। माता परिवार का केन्द्र है, इसलिए वेदों में उसका अभिन्नदन किया गया है। अतः जीवन में माता के महत्व को देखते हुए वेद ने पुत्र को सदा माता के अनुकूल रहने का आदेश लिया है। वसुतुतः माता आदर एवं वात्सल्य की प्रतिमूर्ति है। इसलिए वह स्वर्ग के महान् पृथ्वी से बड़ी और परमात्मा की प्रतिनिधि मानी गई है।

पुत्र-पुत्री

पुत्र-वेदों के अनुसार विवाह का प्रयोजन देव-यजन और सन्तानोत्पत्ति है। अतः आर्य लोग सन्तान-कामना से ही विवाह करते थे। पुत्र-प्राप्ति की कामना भी इसीलिए करते थे ताकि परिवार-

परम्परा अक्षुण्ण रहे। उसी से पुत्र-धर्म का निर्वाह एवं पितृ-तर्पणादि धार्मिक क्रियाएं जीवित रह सकती थी। वही सम्पत्ति का उत्तराधिकारी भी था।

पुत्र ही उत्पन्न होकर अपने पिता को प्रजापति एंव माता को पुत्रवती बनाता था और उन्हें पितृ-ऋण से मुक्त कर, स्वर्गद्वार खोलता था। पुत्र अपने पिता को 'पुम्' नामक नरक से बचाता था। वह उत्तम दानों का फल और स्वर्ग की ज्योति माना गया है। वस्तुतः पुत्र का उद्देश्य दुःख से बचाना है। अतः पुत्र-हीनता की अवस्था में पुत्र-लाभ के लिए पुत्रेष्टि-यज्ञ का विधान मिलता है। सभ्य युवा और वीर पुत्र देश की उत्तम निधि है। इसलिए राष्ट्र का एक अनिवार्य तत्व माना गया है।

पुत्री— संहिता-काल में पुत्र और पुत्री में भेद नहीं था। वैदिक-काल में बालकों के समान बालिकाओं के भी उपनयन आदि संस्कार किए जाते थे।[7] उनके लिए भी गुरुकुलों की व्यवस्था थी, जहाँ वे ब्रह्मचर्यपूर्वक शिक्षा ग्रहण कर सकती थी। एंव ऋषिकाएं और ब्रह्मवादिनियाँ भी बन सकती थी। इसलिए विदुषी पुत्री की कामना की गई थी। कुमारियों को पूत एवं शुभ माना गया है एवं उनके नाम के साथ 'देवी' शब्द लगाया जाता है।

उत्तराधिकार के दृष्टि से औरस-कन्या को दत्तक-पुत्र से श्रेष्ठ माना गया है। यदि किसी की सन्तान केवल कन्याएं ही होतीं, तो वे ही पितृ-सम्पदा की उत्तराधिकारिणी मानी जाती थीं। क्योंकि यदि पुत्र केवल कन्याएं ही होतीं, व्यक्ति की आत्मा के समान है तो उसकी पुत्री उस पुत्र के समान है। अर्थात् इस दृष्टि से पुत्र-पुत्री सम्मान माने गए हैं इसलिए यदि कोई कन्या विवाह न करके पितृ-कुल में रहती थी, तो भाई होने की अवस्था में भी पितृ-सम्पदा में उसका भाग सुरक्षित था।

उस समय भी कन्याओं के विवाह में उन्हें नाना प्रकार के वस्त्राभूषणओं के साथ विदा किया जाता था। विवाहोपरान्त भी वे धन-अनुदान आदि हेतु पितृकुल में आया करती थी।

इस प्रकार वैदिक साहित्य का पर्यालोचन करने के पश्चात् यह अनुभव होता है तत्कालीन समाज में जहाँ पुरुष को कुटुम्ब का नेता माना जाता था वहीं नारी को भी सम्मानीय स्थान प्राप्त था। उसके बिना किसी प्रकार की भी धार्मिक क्रियाएं सम्पन्न नहीं हो सकती थी। पुत्री को पुत्र के समय अधिकार प्राप्त थे। वह उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकती थी। अतः इसीलिए वैदिक परिवार समुन्नत एवं सुखी दिखाई देता है।

सन्दर्भग्रन्थ सूची

1- ऋग्वेद 10-85-42

2- अथर्ववेद 2/30/1

3- अथर्ववेद 2/30/2

4- अथर्ववेद 2/25/3

5- ऋग्वेद 10/85/46

6- ऋग्वेद 10/48/1

7- मनुस्मृति 9/138